6

विद्यार्थी जीवन की यादें

सुधा रानी तैलंग*

बचपन की यादें कितनी यादगार होती हैं कि हम चाह कर भी उन्हें भुला नहीं पाते। स्कूल के दिन लौट आएँ ऐसी तमन्ना हम सभी की होती है। पर ये तो संभव नहीं। लेकिन ये बात ज़रूर है कि उन बीते दिनों की यादों को पुनः ताज़ा किया जा सकता है। अभी हाल ही में सन् 1982 से लेकर 2017 तक 35 सालों के अध्यापन कार्य की लंबी यात्रा मैंने पूर्ण की है पर आज भी मेरे मन के अंदर अपने बचपन के प्रथम स्कूल व मेरे सहपाठियो, गुरूजनों की यादें हिलोरें ले रही है। साठ के दशक के बचपन की यादों को मैं प्राथमिक शिक्षक के मंच पर साझा करना चाहती हूँ।

बचपन की यादें कितनी मधुर होती हैं, जिन्हें चाहकर भी हम नहीं भुला सकते। समय इतनी तेज़ी से गुज़र जाता है कि पता ही नहीं चलता। बचपन के दिन भी कितने सुहाने होते हैं, कि न कोई चिंता, न कोई ज़िम्मेदारी। फिर विद्यार्थी जीवन की तो बात ही अलग है। आज भी उसकी मधुर धुँधली-सी स्मृतियाँ मेरे मानस-पटल पर प्रतिबिम्बित हैं। साठ का दशक, आज से लगभग पचास से भी ज़्यादा सालों का लंबा अंतराल। उस समय की पढ़ाई आज की तरह औपचारिक नहीं थी। उस समय न तो भारी भरकम बस्ते का बोझ, न पाठ्यक्रम की जटिलता थी, न ही होमवर्क की चिंता। कितना सीधा-सादा सरल छात्र जीवन था। पर मेहनत, लगन व अनुशासन तथा गुरु के प्रति आदर की भावना आज से कहीं बेहतर थी।

बीकानेर के दाउजी रोड स्थित एक प्राइमरी सरकारी स्कूल में मैं पढ़ती थी। वो स्कूल उसके प्रधानाध्यापक के नाम से ही पहचाना जाता था– बी.के. व्यास स्कूल। क्योंकि उन्होंने ही उस स्कूल की नींव डाली थी। छोटा-सा साफ़-सुथरा स्कूल। दो कमरे, दो बरामदे व एक छोटा-सा स्टाफ़ रूम, जो साधारण मगर कलात्मक करीने से सजाया गया था। प्रधानाध्यापक जी को मिलाकर स्कूल में कुल तीन ही शिक्षक थे—हनीफ़ सर, अनवर अली सर व हैडमास्टर जी बी.के. व्यास। सब अपने विषयों के अच्छे जानकार व बाल मन को समझने वाले।

उस समय स्कूलों में आज जैसी भीड़ नहीं थी, न ही ऐसी प्रतिस्पर्धा। शुरूआत में स्कूल में कुल मिलाकर तीस चालीस ही बच्चे थे। फिर समय के

* *शिक्षक,* संस्कृत, (सेवानिवृत), मध्य प्रदेश स्कूल शिक्षा विभाग टी-2, सिमरन अपार्टमेंट-2, त्रिलंगा, भोपाल – 462039 (मध्य प्रदेश)

साथ-साथ संख्या में बढ़ोत्तरी होती गई। हमारे स्कूल में पढ़ाई के साथ-साथ एक पीरियड क्राफ़्ट का भी लगता था। तकली से सूत कातने के प्रशिक्षण के साथ-साथ कागज़ के फूल, मालाएँ, गत्तों से झोंपड़ी, खिलौने बनाना सिखाया जाता था। हेडमास्टर जी खुद एक अच्छे कलाकार थे। बड़े शौक से हमें चित्र बनाना सिखाते थे। जो कुछ छात्र-छात्राएँ बनाते, उसकी प्रदर्शनी भी साल में एक बार लगती थी।

क्लास रूम में बच्चों के बैठने के लिए टाटपट्टी व डेस्क होते थे। डेस्क में पानी की बोतल के साथ एक सूती कपड़े का टुकड़ा ज़रूर होता था। स्लेट साफ़ करने के लिए हम पानी इंजेक्शन वाली शीशी में लाते थे। पेन के साथ स्याही की छोटी शीशी ज़रूर लाते थे। एक लकड़ी की कलम सुलेख के लिए बच्चे लाते थे। हमारी डेस्क में एक पीतल का गिलासनुमा आकार स्याही भरने के लिए बना रहता था।

हम सभी बच्चों में बहुत संगठन था, किंतु कक्षा में कुछ बड़ी उम्र के छात्र होने के कारण पढ़ाई में बहुत परेशानी होती थी। क्लास में लड़कियों की संख्या ज़्यादा होने के कारण लड़के हम से डरते थे। आगे सीट मिलने के लालच में हम सभी जल्दी स्कूल पहुँच जाते थे। हमारे बैग में रहती थी किताबें, स्लेट, बत्ती, कापी के सूत कातने के लिए तकली व रूई स्कूल से ही मिलती थी। स्कूल में हम टिफ़िन लंच के लिए नहीं ले जाते थे, क्योंकि घर पास होने के कारण मध्यावकाश में घर ही जाते थे।

उस समय पढ़ाई के साथ गिनती, पहाड़े व बारहखड़ी को रटने पर बहुत ज़्यादा ज़ोर दिया जाता था। याद न करने पर स्केल, डंडों की मार या मुर्गा बनने की सजा भुगतनी पड़ती थी। हमें जब भी मार पड़ती तो थोड़ी देर बुरा लगता था और बाद में घर जाकर यदि हम मास्टर जी की शिकायत भी कर देते तो घर में उल्टे हमें ही डाँट पड़ जाती। आज के दौर में तो बच्चों को डाँटने व मारने पर पूर्णतया पाबंदी है।

पर देखा जाए तो टीचर्स की मार, डाँट में ही उनका प्यार, स्नेह व आशीर्वाद छिपा रहता था। आज तो गुरू-शिष्य के रिश्ते केवल बनावटी व औपचारिक होते जा रहे हैं। इसीलिए आज की पीढ़ी में अनुशासन व नैतिकता की कमी होती जा रही है। गुरुजनों का सभी बच्चे बेहद सम्मान करते थे। टीचर्स भी हमें अपार स्नेह करते थे। पर अनुशासन व कड़ाई का भी ध्यान रखते थे।

हमारे स्कूल में हिंदी व गणित के साथ सुलेख व डिक्टेशन का अभ्यास करवाया जाता था। उस वक्त अंग्रेज़ी का विषय पाठ्यक्रम में प्राइमरी स्तर में नहीं था। फिर भी खाली पीरियड में अंग्रेज़ी का प्रारंभिक ज्ञान हेडमास्टर जी स्वयं हमारे स्कूल में करवाते थे। साथ ही वे अंग्रेज़ी व हिंदी की लिखावट सुधरवाने के लिए हम बच्चों से नियमित रूप से अभ्यास करवाते। बचपन की ये ही छोटी-छोटी बातें, आदतें ही आगे जाकर मेरे जीवन की प्रेरणा स्रोत बनीं।

उस दौर में पाठ्यक्रम की जटिलता, परीक्षा का तनाव व बस्ते का बोझ आज की तरह नहीं था। बच्चे उन्मुक्त होकर बिना किसी दबाव के पढ़ाई करते थे। साथ ही टीचर्स पर भी आज की तरह काम का बोझ नहीं था। पढ़ाई के साथ खेल कूद व बागवानी, क्राफ़्ट, सांस्कृतिक व साहित्यिक गतिविधियाँ हमारे प्राइमरी स्कूल में पूरे साल होती रहती थी और इसका श्रेय

जाता था हमारे हेडमास्टर जी को। अंतिम पीरियड में हम सभी लड़के-लड़कियाँ, रस्सीकूद, दौड़, आँख मिचौली, आईस-पाईस, सतोलिया, खो-खो, कबड्डी खेलते। हमारे प्रधानाध्यापक जी ने स्कूल के पीछे एक छोटा-सा बगीचा बना रखा था। उसमें सब बच्चों ने मिलकर गेंदा, गुलाब, तुलसी के पौधे लगाए थे।

स्कूल के पीछे ही शिवजी का एक मंदिर था, जिसका दरवाज़ा स्कूल के पीछे भी खुलता था। मंदिर की परिक्रमा बच्चों के आईस-पाईस खेलने की पंसदीदा जगह थी। मध्यावकाश में हम कुछ बच्चे मंदिर में दर्शन करने जाते। परिक्रमा लगाकर पंडितजी से भोग लेकर स्कूल वापिस आ जाते। पंडितजी से हमारी दोस्ती केवल प्रसाद पाने की लालच में थी। जिस दिन वो प्रसाद नहीं देते हम सभी बच्चे बहुत शोर मचाते।

स्कूल एक किराए की बिल्डिंग में चलता था। उसकी मकान मालकिन स्कूल में बार-बार चक्कर लगाती थी। उसका अच्छा खासा रौब था। हम सभी बच्चे उसे शेरिया की बाई कहकर पुकारते थे। वो हम सभी बच्चों को प्यार करती थीं। हमारी मदद भी करतीं। कभी-कभी उन्हें पढ़ाने का शौक लगता था तो वो कक्षा में आकर पढ़ाने भी लगतीं। पर एक कमी ज़रूर खलती थी कि कोई महिला टीचर हमारे स्कूल में नहीं थी। स्कूल में शिक्षकों को पढ़ाते देख मेरे बालमन में इच्छा होती कि मैं भी बड़ी होकर टीचर बनूँगी। कभी किसी टीचर को कुछ काम होता तो क्लास खाली होने पर मुझे अपने साथियों को पढ़ाने की ज़िम्मेदारी मिल जाती। मैं क्लास की मॉनीटर थी इसलिए बच्चे पढ़ भी लेते। पहाड़े-गिनती, बारहखड़ी का रट्टा लगवाने के साथ-साथ मैं क्लास में कभी-कभी अंताक्षरी भी करवा देती थी।

एक घटना को मैं जीवन भर नहीं भूल सकूँगी जिसने मेरे बालमन को टीचर बनने को प्रेरित किया। एक बार कक्षा में पढ़ाते हुए हेड मास्टर जी कुछ काम से क्लास सँभालने की ज़िम्मेदारी सौंप कर बाहर चले गए। उनके जाते ही मैंने मेज से उनका चश्मा उठाया और पहन कर कुर्सी में बैठ कर उनकी स्टाइल में ही पढ़ाना व डाँटना शुरू कर दिया। कुछ ही देर में बाहर खिड़की से प्रधानाध्यापक जी ने मुझे कुर्सी पर बैठकर पढ़ाते हुये देख लिया। डंडों की मार तो पड़ी। साथ ही मुझे पूरे पीरियड खड़े होने की सजा भी मिली।

मैं बहुत रोई। मैंने अपनी गलती पर उनसे माफ़ी माँगी। तो उन्होंने मुझे चुप कराते हुए कहा, "तुम्हें शौक है पढ़ाने का, अच्छी बात है, पर अभी तो तुम बहुत छोटी हो। इसके लिए तुम्हें मेहनत करनी पड़ेगी, पढ़ाई करनी पड़ेगी। तब तुम बड़ी होकर ज़रूर टीचर बनोगी। बेटा हमेशा एक बात का ध्यान रखना कि जब भी क्लास खाली हो तुम बच्चों को पाठ पढ़ाओ, प्रश्न पूछो पर कुर्सी पर बैठकर नहीं। क्योंकि गुरु का आसन बड़ा होता है।" उनके शब्दों ने मुझे पढ़ाई करने व मेहनत करने को प्रेरित किया और मैं आगे जाकर उनके आशीर्वाद से ही मध्य प्रदेश स्कूल शिक्षा विभाग में टीचर ही बनी।

हर शनिवार को स्कूल में बाल सभा होती थी जिसमें भाषण, वाद-विवाद, अंताक्षरी, गीत, डांस व मोनोएक्टिंग के कार्यक्रम होते। बाल सभा में मैं हमेशा भाग लेती। हमारे प्रधानाध्यापक जी को पढ़ाई के साथ-साथ सांस्कृतिक कार्यक्रम, खेलकूद, सभी प्रकार के कार्यक्रमों में रुचि थी। वे खुद बच्चों के

साथ बच्चे बनकर खेलते व भाग लेते। वे स्कूल को एक आदर्श विद्यालय बनाना चाहते थे और इसमें वे सफल भी हुए।

प्रति वर्ष हमारे विद्यालय में वार्षिक उत्सव भी होता था, जिसकी तैयारियाँ हम ज़ोर-शोर से एक डेढ़ महीने पहले से ही कर देते थे। उसकी तैयारी में मैं हमेशा अपनी बुआ जी की मदद लेती थी। एक बात उस समय से आज अलग थी कि वार्षिकोत्सव में टीचर्स भी पूरे उत्साह से भाग लेते थे। वार्षिकोत्सव देखने भारी भरकम भीड़ उमड़ पड़ती थी। क्योंकि उस समय टीवी वगैरह मनोरंजन के साधन तो थे नहीं इसलिए ऐसे कार्यक्रम सभी को अच्छे लगते थे। वार्षिक उत्सव में नाटक, प्रहसन, नृत्य, मोनोएक्टिंग के साथ-साथ फैंसी-ड्रेस का कार्यक्रम भी ज़रूर किया जाता था।

मेरे दादाजी संगीतज्ञ थे इस कारण मैं राजस्थानी गीत व नृत्य में ज़रूर भाग लिया करती थी। क्योंकि दादाजी हमेशा मुझे प्रोत्साहित करते थे। वार्षिकोत्सव का मुझे बेसब्री से इंतजार रहता था, क्योंकि इसमें कक्षा में प्रथम आने वाले छात्र-छात्राओं को पुरस्कार दिया जाता था। मैं हमेशा कक्षा में प्रथम आती थी, ऐसे में मुझे पुरस्कार मिलने और इस उत्सव की खुशी ज़्यादा रहती।

स्कूल में घर-परिवार जैसा ही वातावरण था। आज की तरह औपचारिकता न होकर बेहद अपनापन लगता था। पूरे पीरियड पढ़ाई होती थी। यदि कोई विद्यार्थी स्कूल नहीं आता तो हेडमास्टर जी बच्चों को घर-घर से बुलवाते। उस समय पढ़ाई के प्रति जागरुकता नहीं थी ऐसे में कई बार 'बच्चों को स्कूल भेजो' के नारे लगाते आस-पास के इलाके में हम बच्चों की टोली टीचर्स के साथ निकलती। उस समय हमारे बालमन को पता नहीं होता था कि हम क्यों और किसलिए नारे लगाते हुए जा रहे हैं, बस हम तो एक दिन बाहर घूमने की आज़ादी और पढ़ाई से छुट्टी मिलने की खुशी में 'स्कूल चलो अभियान' में शामिल होने पहुँच जाते थे।

आज के माहौल में अंग्रेज़ी मीडियम के प्राइवेट स्कूलों में सभी अपने बच्चों को पढ़ाना चाहते हैं। पर हमारा वो सरकारी प्राइमरी स्कूल आज के बड़े-बड़े पब्लिक स्कूलों से भी अच्छा था। हिंदी माध्यम से पढ़कर भी उस स्कूल के छात्र आज कोई कार्टूनिस्ट, कोई डॉक्टर, तो कोई वकील, अभिनेता, आई.ए.एस. अधिकारी तक बन चुके हैं। सचमुच कितना फ़र्क है आज की व पुराने समय की पढ़ाई में व स्कूलों में। छात्रों व गुरुजनों के स्नेहिल संबंधों, आस्था व श्रद्धा में। पर आज न तो वैसे विद्यालय हैं, न वैसे छात्र हैं, न ही शिक्षक, न ही वैसा वातावरण व सीखने की उत्कंठा। आज के मशीनी युग में सब कुछ बदल गया है। गुरु-शिष्य के संबंध मात्र स्कूल तक ही सीमित रह गए हैं। पाठ्यक्रम बेहद जटिल व बोझिल बन गया हैं। बस्ते का भारी बोझ व होमवर्क की बढ़ती मार के कारण बच्चों के पास आज समय ही नहीं है। जो समय बचता है वह टीवी, इंटरनेट व मोबाइल में ही चला जाता है।

सच इतने लंबे अर्से के बाद भी अपने बचपन के विद्यार्थी जीवन को, गुरुजनों व अपने प्रथम विद्यालय को आज तक मैं नहीं भूल सकी हूँ। जिसने मुझे अक्षर ज्ञान, शब्द ज्ञान के साथ जीवन को जीना सिखाया। ऐसे विद्यालय को भी भला कोई भूल सकता है क्या?